इकाई 9 गीता में स्थितधी की प्रशंसा

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 स्थितप्रज्ञ का लक्षण

9.3 स्थितधी की प्रशंसा

9.4 सारांश

9.5 शब्दावली

9.6 कुछ उपयोगी पुस्तक

9.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- गीता में स्थितप्रज्ञ के स्वरूप से अवगत हो सकेंगे ।
- गीता में स्थितधी की प्रशंसा के बारे में जान सकेंगे ।
- परमात्म–स्वरूप की प्राप्ति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।

9.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने गीता में इन्द्रियनिग्रह व इन्द्रियनिग्रह फल के विषय में सुस्पष्ट तरीके से ज्ञान प्राप्त किया । आप यह जानते है कि कोई भी मनुष्य इन्द्रियनिग्रह के द्वारा ही परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है। इन्द्रियनिग्रह के लिए मनुष्य को अपनी बुद्धि को स्थिर करना आवश्यक है । स्थिर बुद्धि से तात्पर्य है कि बुद्धि को सब ओर से हटाकर किसी एक विषय में अध्यवसाय करना । जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही परमशान्ति को प्राप्त होता है।

9.2 स्थितप्रज्ञ का लक्षण

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं जो मनुष्य समस्त कामनाओं का परित्याग करके अपनी बुद्धि को स्थिर कर लेता है वह मानसिक द्वन्द्वों से पीड़ित नहीं होता है । स्थिरबुद्धि वाला मनुष्य अपने समस्त कार्यों को पूर्ण करता हुआ आत्मसन्तुष्टि एवं प्रसन्नता का अनुभव करता है –

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थमनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ (गीता – 2/55)

अन्वय – पार्थ यदा मनोगतान् सर्वान् कामान् प्रजहाति तदा आत्मना एव आत्मनि तुष्टः स्थितप्रज्ञः उच्यते ।

शब्दार्थ – पार्थ = हे पृथा पुत्र (अर्जुन), यदा = जिस समय में (यह पुरुष), मनोगतान् = मन में स्थित, सर्वान् = सम्पूर्ण, कामान् = कामनाओं को, प्रजहाति = त्याग देता है, तदा = उस समय में, आत्मना = आत्मा से, एव = ही, आत्मनि = आत्मा में, तुष्टः = संतुष्ट हुआ, स्थितप्रज्ञः = स्थिरबुद्धि वाला, उच्यते = कहा जाता है।

हिन्दी अर्थ – भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे पृथा पुत्र अर्जुन ! जिस समय मनुष्य अपने मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं का परित्याग कर देता है और आत्मा (स्वयं) द्वारा आत्मा में (स्वयं के अन्दर) जब संतुष्ट रहता है उस समय वह व्यक्ति स्थितप्रज्ञ अर्थात् स्थिर बुद्धि वाला कहलाता है।

व्याकरणिक टिप्पणी –

पार्थ– पृथा + अन् (अपत्य अर्थ में तद्धित प्रत्यय)

प्रजहाति– प्र + हा + लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन ।

मनोगतान् – मनस् + (गम् + क्त = गत), मनस् + गत, सन्धि होकर मनोगत । द्वितीया विभक्ति, बहुवचन ।

आत्मना– 'आत्मन्' का तृतीया विभक्ति एकवचन ।

आत्मनि– 'आत्मन्' का सप्तमी विभक्ति, एकवचन ।

तुष्टः – तुष् + क्त ।

स्थितप्रज्ञ– स्थिता प्रज्ञा यस्य सः स्थितप्रज्ञः, बहुव्रीहि समास

छन्द – अनुष्टुप ।

9.3 स्थितधी की प्रशंसा

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ (गीता –2/70)

अन्वय – यद्वत् आपूर्यमाणम् अचलप्रतिष्ठम् समुद्रम् आपः प्रविशन्ति तद्वत् यम् सर्वे कामाः प्रविशन्ति सः शान्तिम् आप्नोति न कामकामी।

शब्दार्थ – यद्वत् = जैसे, आपूर्यमाणम् = चारों ओर से जल द्वारा परिपूर्ण, अचलप्रतिष्ठम् = अचल प्रतिष्ठावाले, समुद्रम् = समुद्र के प्रति, आपः = नाना नदियों के जल, प्रविशन्ति = समा जाते हैं, तद्वत = वैसे ही, यम् = जिस स्थिर बुद्धि पुरुष के प्रति, सर्वे = सम्पूर्ण, कामाः = भोग, किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही, प्रविशन्ति = समा जाते हैं, सः = वह पुरुष, शान्तिम् = परम शान्ति को, आप्नोति = प्राप्त हो जाता है, न = न कि, कामकामी = भोगों को चाहने वाला।

हिन्दी अर्थ – जैसे नाना नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठावाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परमशान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं ।

संसार के सम्पूर्ण भोग उस परमात्म तत्त्व को जानने वाले संयमी मनुष्य को प्राप्त होते हैं, उसके सामने आते हैं, पर वे उसके कह जाने वाले शरीर और अन्तःकरण में

सुख–दुःख रूप विकार पैदा नहीं कर सकते । अतः वह परम शान्ति को प्राप्त होता है।

इसी भाव को व्यक्त करते हुए मुण्डकोपनिषद् में भी कहा गया है कि जो कामनाओं का ध्यान करके इच्छा करता है वह उन–उन कामनाओं को प्राप्त करता है । परन्तु जो ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर निरिच्छ परिपूर्ण आप्तकाम कृत्यकृत्य पुरुष की सम्पूर्ण कामनाएँ समाप्त होकर आत्मा में तृप्त हो जाती है उसकी सब कामनाएं इस जीवन में ही विलीन हो जाती है । (मुण्डकोपनिषद् 3/2/2)

व्याकरणिक टिप्पणी –

आपूर्यमाणाम् – आ + पूर्य + शानच् तुम् ।

अचलप्रतिष्ठम् – अचला प्रतिष्ठा यस्य तम् ।

आप : – सद्वैव बहुवचन में प्रयुक्त 'अपस्' का प्रथमा बहुवचन ।

शान्ति– शम् + क्तिन् ।

यद्वत् – यद् + वति ।

तद्वत् – तद् + वति ।

छन्द – उपजाति ।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।(गीता –2/72)

अन्वय– पार्थ एषा ब्राह्मी स्थितिः एनाम् प्राप्य न विमुह्यति। अन्तकाले अपि अस्याम् स्थित्वा ब्रह्मनिर्वाणम् ऋच्छति।।

शब्दार्थ – पार्थ = हे अर्जुन, एषा = यह, ब्राह्मी = ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की, स्थितिः = स्थिति है, एनाम् = इसको, प्राप्य = प्राप्त होकर, न = नहीं, विमुह्यति = मोहित नहीं होता है, अन्तकाले = अन्तकाल में, अपि = भी, अस्याम् = इस निष्ठा में, स्थित्वा = स्थित होकर, ब्रह्मनिर्वाणम् = ब्रह्मानन्द को, ऋच्छति = प्राप्त हो जाता है ।

हिन्दी अर्थ – हे अर्जुन ! यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है, इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकाल में भी इस ब्रह्मी स्थिति में स्थित होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है ।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ– यह ब्राह्मी स्थिति है अर्थात् ब्रह्म को प्राप्त हुए मनुष्य की स्थिति है । अहंकार रहित होने से जब व्यक्तित्व मिट जाता है, तब उसकी स्थिति स्वतः ही ब्रह्म में होती है ।

नैनां प्राप्य विमुह्यति– जब तक शरीर में अहंकार रहता है, तभी तक मोहित होने की सम्भावना रहती है । परन्तु जब अहंकार का सर्वथा अभाव होकर ब्रह्म में अपनी स्थिति का अनुभव हो जाता है, तब व्यक्तित्व टूटने के कारण फिर कभी मोहित होने की सम्भावना नहीं रहती ।

स्थितत्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति– मनुष्य शरीर केवल परमात्म प्राप्ति के लिये ही मिला है । जो मनुष्य जड़ता से अपना सम्बन्ध–विच्छेद कर लेता है, वह जन्म–मरण से मुक्त हो जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि जो कोई अन्तकाल में मेरा स्मरण करता हुआ प्राण छोड़ता है, वह मेरे को ही प्राप्त होता है।

इसी भाव को व्यक्त करते हुए महाभारत में कहा है कि बुद्धि से सर्व शारीरिक एवं मानसिक संकल्पों को छोड़कर मनुष्य उस निर्वाण को प्राप्त करता है जैसे अग्नि बिना इन्धन के परमशान्ति को प्राप्त करती है । (महाभारत – 14.5.53)

व्याकरणिक टिप्पणी –

स्थितिः – स्था + क्तिन् । स्त्रीलिंग में कृत् प्रत्यय ।

प्राप्य – प्र + आप् + कत्वा (ल्यप्)

स्थित्वा – स्था + कत्वा ।

ब्राह्मी – ब्रह्मन् + अण् (अजातौ) ङीष् ।

निर्वाणं – निर्गतं वानं गमनं यस्मिन् ब्रह्मणि (नीलकण्ठी) निर् + वा + युच्

ऋच्छति – ऋ + लट् + तिप् ।

छन्द – अनुष्टुप

9.4 सारांश

- स्थितप्रज्ञ के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हुआ।
- स्थितप्रज्ञ परमात्मा की प्राप्ति का साधन है यह अवबोध हुआ ।
- जीवन में परमशान्ति की प्राप्ति कैसे हो इसके बारे जाना ।
- सांसारिक भोगों के त्याग से आत्मिक शान्ति सम्भव है यह जाना ।

9.5 शब्दावली

ब्रह्मानन्द – ब्रह्म शब्द आनन्द का वाचक है

आत्मना – आत्मा (स्वयं) के द्वारा

अहंकार – अभिमान

निर्वाण – त्रिविध दुःखों से मुक्ति

9.6 कुछ उपयोगी पुस्तक

1. श्रीमद्भगवद्गीता, राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, २००६
2. श्रीमद्भगवद्गीता (साधक–संजीवनी) हिन्दी टीका, स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० २०७१
3. गीता में आत्मप्रबन्धन, विनोद कुमार, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २०१२
4. ईशादि नौ उपनिषद्, शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०६६
5. भारतीय–दर्शन–बृहत्कोश, बच्चूलाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, २००४

9.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1) स्थितप्रज्ञ क्या है ?

.....

.....

2) जन्म–मरण से किस प्रकार के मनुष्य मुक्त हो जाते है ?

.....

.....

बोध प्रश्न – 2

1. गीता के अनुसार स्थितधी की प्रशंसा का वर्णन कीजिए ।

.....

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

बोध प्रश्न 1

1) जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर संतुष्ट रहता है, उसे स्थितप्रज्ञ कहते है।

2) जो मनुष्य जडता से अपना सम्बन्ध–विच्छेद कर लेता है, वह जन्म–मरण से मुक्त हो जाता है ।

बोध प्रश्न– 2

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखे ।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY